जीवन हीरे-तुल्य कैसे बने?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन, आबू पर्वत (राजस्थान)

विषय-सूची

- जीवन हीरे-तुल्य कैसे बने? 1
- ईश्वरीय ज्ञान और उसमें निश्चय 3
- दिनचर्या पर ध्यान 7
- दिव्य गुणों की धारणा 17
- नियमों का पालन 28

मुद्रक:

ओमशान्ति प्रिंटिंग प्रेस,

शान्तिवन, **आबू रोड – 307 510**

☎ – 228125, 228126

पुस्तक मिलने का पता:

साहित्य विभाग,

पाण्डव भवन, **आबू पर्वत – 307 501**

कापी राइट:

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय,

पाण्डव भवन, **आबू पर्वत – 307 501** (राजस्थान)।

जीवन हीरे-तुल्य कैसे बने ?

आज हम देखते हैं कि एक ओर तो संसार विज्ञान द्वारा खूब उन्नति कर रहा है और मनुष्य चाँद तक पहुँच चुका है परन्तु दूसरी ओर मनुष्य का चरित्र दिनोंदिन गिरता जा रहा है। मनुष्य का आज जैसा व्यवहारिक जीवन है और संसार की आज जैसी हालत है, वैसी सतयुग और त्रेतायुग में नहीं थी और कलियुग में भी अब से कुछ समय पहले तक नहीं थी। अब तो वायुमण्डल ही बदल गया है और इस दुनिया में सुख का तो बिल्कुल ही सार नहीं रहा। दो शब्दों में हम कह सकते हैं कि अब मनुष्य का जीवन कौड़ी-तुल्य हो गया है। क्योंकि अब तो जीवन में न दैवीगुण हैं और न ही सच्ची शान्ति। आज की परिस्थिति को देखकर बहुत-से लोग निराश हैं और सोचते हैं कि इतने साधुओं, संतों और सभी महात्मा लोगों ने दो-ढाई हज़ार वर्ष भरसक प्रयत्न किया परन्तु फिर भी दुनिया में गिरावट ही होती आई है और अब तो इस दुनिया के सुधरने का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं देता। अन्य कई लोग चिन्तित-से हो पूछते हैं कि – आखिर इस दुनिया का और मनुष्य का क्या हाल होगा, इसका सुधार कैसे होगा? क्या इसके बदलने की कुछ संभावना है? अन्य कई लोग कहते हैं – यदि परमात्मा है तो वह इस सृष्टि को सुधारते क्यों नहीं? यदि परमात्मा का अवतरण होता है तो वह अवतरित होकर मनुष्य मात्र को सदाचार का पाठ क्यों नहीं पढ़ाते और दु:ख का अन्त करके यहाँ सुख की स्थापना क्यों नहीं करते?

इस विषय में हम यह स्पष्ट बता देना चाहते हैं कि विश्व में सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति स्थापित करने का सामर्थ्य और उनके लिए आवश्यक ज्ञान किसी भी मनुष्य में नहीं है, चाहे वह कितना भी महान् क्यों न हो। यह कार्य केवल ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, सर्वशक्तिवान,

पतित-पावन परमपिता परमात्मा ही कर सकते हैं जिन्हें कल्याणकारी होने के कारण शिव कहा जाता है। परमात्मा शिव जब यह कार्य करते हैं तब कलियुग का और दु:ख का अन्त हो जाता है और सतयुग अर्थात् सम्पूर्ण सुख का जमाना आ जाता है तथा मनुष्य का जीवन कौड़ी-तुल्य से हीरे-तुल्य बन जाता है और फिर सतयुग और त्रेतायुग में दु:ख और अशान्ति का बिल्कुल नाम-निशान भी नहीं होता। परमपिता परमात्मा यह कर्त्तव्य सारे कल्प में एक ही बार, कलियुग के अन्त में धर्म की अति ग्लानि के समय ही करते हैं।

अब हम आपको यह शुभ सूचना देना चाहते हैं कि वह परमप्रिय, निराकार परमपिता परमात्मा शिव अब यह शुभ कर्त्तव्य कर रहे हैं और निकट भविष्य में ही मनुष्य मात्र की सुख-शान्ति की इच्छा पूर्ण हो जाने वाली है। शायद हमारे इस कथन पर आपको आश्चर्य भी होता होगा परन्तु यदि आप विचार करें तो आज की परिस्थितियाँ ही इस बात का प्रमाण हैं कि वर्तमान समय परमात्मा के अवतरित होने और इस संसार के बदलने का समय है। आप देख तो रहे हैं कि आज विश्व के महाविनाश के लिए एटम और हाइड्रोजन बम तैयार हो चुके हैं और आज संसार में भ्रष्टाचार और पापाचार इतना बढ़ चुका है और विश्व में इतनी जटिल समस्याएँ इकट्ठी हो चुकी हैं कि अब परमपिता परमात्मा के सिवा इन्हें और कोई भी नहीं सुधार सकता। अत: अब निश्चय ही परमपिता परमात्मा शिव, प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार दे रहे हैं।

अब कल्याणकारी, पतित-पावन परमपिता परमात्मा शिव ने, मनुष्य जीवन को कौड़ी-तुल्य से हीरे-तुल्य बनाने के लिए और सृष्टि को पुन: सतयुगी और दैवी बनाने के लिए चार मुख्य बातें सहज रीति से समझाई हैं और उन्हें अपने प्रैक्टिकल जीवन में अपनाने की शिक्षा दी है, उन्हीं में से केवल तीन अनमोल परन्तु सहज युक्तियों का उल्लेख इस लेखमाला में किया गया है। ❑

ईश्वरीय ज्ञान और उसमें निश्चय

देखा जाय तो मनुष्य के मन में सुख और शान्ति न होने का एकमात्र कारण यही है कि मनुष्य स्वयं को भूला हुआ है। आज वह न स्वयं को पहचानता है, न अपने परमप्रिय परमपिता को जानता है और न ही अन्य मनुष्यों के साथ अपने वास्तविक नाते को जानता है।

आप कहेंगे कि अपने आपको, अपने पिता को तथा अन्य मनुष्यों के साथ अपने नाते को तो हरेक मनुष्य जानता है। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि हरेक मनुष्य अपनी देह को, देह के पिता को और देह के नातेदारों को तो जानता है, परन्तु सबसे बड़ी भूल यह है कि देह से भिन्न, देह में रहने वाला वह स्वयं जो चेतन शक्ति है, उसको वह नहीं जानता। वह स्वयं तो एक आत्मा ही है और परमपिता परम-आत्मा ही की अविनाशी संतान है। परन्तु उसे यह बात भूल जाती है और अन्य लोगों के साथ भी जब वह व्यवहार करता है तो यह बात उसकी स्मृति में नहीं रहती। उसे यह याद नहीं रहता कि – मैं कौन हूँ; मैं कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, इस संसार रूपी खेल का वृत्तान्त क्या है और मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है तथा मेरे कर्म कैसे होने चाहिएँ? इन सभी बातों को न जानने के कारण ही संसार की हालत बिगड़ गई है।

अत: आज मनुष्य का और संसार का कल्याण तभी हो सकता है जब पहले तो अपने आपको और अपने परम प्यारे परमपिता परमात्मा को जाने, अपने जीवन-लक्ष्य को पहचाने तथा कर्मों की गति और उसके गुह्य रहस्य को समझे। परन्तु इस ज्ञान को केवल समझना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि समझ कर उसे प्रैक्टिकल जीवन में लाना भी ज़रूरी है। तभी उसके जीवन में परिवर्तन आ सकेगा और सच्चे सुख का अनुभव भी

हो सकेगा।

उदाहरण के तौर पर हम देखते हैं कि जब किसी छोटे बच्चे को उसका पिता यह ज्ञान देता है कि – मैं तुम्हारा पिता हूँ, यह तुम्हारी माता है, अमुक तुम्हारा भाई है, मेरा नाम अमुक है और देश का नाम फलाँ है; तो वह बच्चा उस परिचय को समझ तक ही नहीं रखता बल्कि व्यवहार में भी बरतता है। उस नाते को जानकर प्रैक्टिकल जीवन में उसके अनुसार चलने से ही उसे अपने पिता से सम्पत्ति तथा जन्म-सिद्ध अधिकार की प्राप्ति होती है। ठीक इसी प्रकार, परमपिता परमात्मा भी अपने दिव्य धाम का और सभी आत्माओं के साथ अपने अविनाशी सम्बन्ध का जो परिचय देते हैं, हमें केवल उसे बुद्धि द्वारा जान लेना ही काफी नहीं समझ लेना चाहिए, बल्कि उस ज्ञान को अपने प्रैक्टिकल जीवन में उपयोग में लाना चाहिए और परमपिता परमात्मा के साथ प्रैक्टिकल रीति से हमारा वह स्नेह और नाता होना चाहिए, तभी हमें परमपिता परमात्मा से सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

ईश्वरीय ज्ञान में निश्चय

ईश्वरीय ज्ञान को जीवन में प्रैक्टिकल रीति से धारण करने का तरीका यही है कि मनुष्य कार्य-व्यवहार करते समय भी उस ज्ञान के निश्चय में रहे। उस निश्चय में स्थिर रहने से उसके कर्मों में बहुत अन्तर आयेगा क्योंकि मनुष्य का जैसा निश्चय होता है, वैसा ही वह कर्म करता है। आप देखते हैं कि एक मनुष्य घर में स्वयं को जब पिता निश्चय करता है तो उसका व्यवहार अथवा उसके कर्म भी पिता के जैसे ही होते हैं।

वही मनुष्य जब किसी स्कूल में पढ़ाने जाता है तो वह स्वयं को अध्यापक निश्चय करता है और उसका कर्त्तव्य भी अध्यापक ही का चलता है। वह जब अपने मित्रों में बैठता है तो स्वयं को उनका मित्र निश्चय करता है और उनके साथ वैसे अनौपचारिक रीति से और नि:संकोच होकर मित्र भाव से बातें करता है। इस प्रकार, मनुष्य का निश्चय ही उसके कर्मों का नेता है। जैसा वह अपने को निश्चय करता है, वह वैसा ही हो जाता है।

अत: अब परमपिता परमात्मा शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा हमें जो ईश्वरीय ज्ञान दिया है उसमें निश्चय करने से ही हमारे जीवन में उन्नति हो सकती है। जब तक उसमें हमारा निश्चय नहीं होगा तब तक हमारा पुरुषार्थ यथार्थ रीति से शुरू ही नहीं होगा और जितना-जितना हमारा निश्चय होगा उतनी ही हमें सफलता मिलेगी। इसीलिए कहा गया है कि निश्चयात्मा विजयन्ति, संशयात्मा विनश्यन्ति।

निश्चय के रूप में ज्ञान की प्रैक्टिकल जीवन में धारणा

अब हमें चलते-फिरते, उठते-बैठते, कार्य-व्यवहार करते हुए इसी निश्चय में स्थित होना है कि – मैं आत्मा हूँ, मैं कल्याणकारी, सुखदाता, शान्तिदाता, त्रिलोकीनाथ, सर्वशक्तिवान, ज्योति स्वरूप परमपिता परमात्मा की ज्योति स्वरूप संतान हूँ। मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह शरीर तो मेरा रथ है जिस पर मैं सवार हूँ। मैं स्वयं तो ब्रह्मलोक का रहने वाला एक ज्योतिर्बिन्दु, अविनाशी आत्मा हूँ और प्रारम्भ में तो मैं पवित्र, शान्तिमय और निर्विकारी था। मैं इस सृष्टि रूपी कर्म-क्षेत्र पर अपना अनादि-निश्चित पार्ट बजाने आया हूँ, आखिर मुझे यहाँ से वापस अपने शान्तिधाम चले ही जाना है। इसलिए यहाँ के धन-जन के साथ बरतते हुए भी मुझे इससे न्यारा और अनासक्त ही रहना है क्योंकि इनके साथ तो मेरा क्षणिक नाता है।

आखिर तो मुझे यह शरीर रूपी खाल यहीं उतार कर फिर ज्योतिर्बिन्दु रूप में वापस जाना ही है। चूँकि मैं उस ज्योति स्वरूप व ज्योतिर्बिन्दु परमात्मा शिव की संतान हूँ, अत: मुझे भी उनकी तरह कल्याणकारी ही कर्त्तव्य करने हैं। मैं किसी के प्रति भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, हिंसा आदि के भाव से कर्म नहीं करूँगा क्योंकि मैंने अपना या अन्य किसी का अकल्याण तो करना ही नहीं है, कारण कि जो अन्य किसी का अकल्याण करता है उसका तोअपना भी अकल्याण ही होता है। अत: अब इन वासनाओं और विकारों को छोड़कर, मैं घर में रहते हुए भीअपनी लग्न ईश्वर से लगाऊँगा, हड्डी और माँस के पिंजर रूप शरीर से नहीं। अब तो मैं एकरस आनन्द और ईश्वर की याद की मस्ती में मस्त रहूँगा। मैं कर्त्तव्य तो करूँगा परन्तु परिणाम की चिन्ता या व्यथा से उपराम होकर शान्त रहूँगा क्योंकि मुझे तो अपने जीवन को हीरे-तुल्य बनाना है, उसे इस कलियुगी संसार की कौड़ियों के लिए गँवाना नहीं है।

मैं तो अब स्वरूपनिष्ठ होकर, आने वाले विनाश से सावधान होकर अपना तथा दूसरों का कल्याण करने का ही कर्त्तव्य करूँगा। अब जो ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग परमपिता परमात्मा सिखला रहे हैं, मैं उनमें स्थित होकर दूसरों का शुभचिन्तक हो, उनको भी पवित्रता और योग के मार्ग पर चलने का सुझाव दूँगा। मैं स्वयं कमल-पुष्प के समान पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए और योग-स्थिर होते हुए, दूसरों को भी योगयुक्त होने की प्रेरणा दूँगा। अब परमपिता परमात्मा जिस सतोप्रधान, सतयुगी, दैवी गुणों वाली सृष्टि की स्थापना करा रहे हैं, मैं भी उस सर्वोत्तम सेवा में तन-मन और धन से सहयोगी बनूँगा।

❑

पहली युक्ति

दिनचर्या पर ध्यान

अपने जीवन को ऊँचा अर्थात् हीरे-तुल्य बनाने के लिए मनुष्य को अपनी मनसा-वाचा और कर्मणा पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। उसे अपनी सारी दिनचर्या को सावधानी से चलाना चाहिए और आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए। दिनचर्या पर ध्यान न देने से और अलबेला होकर चलने से ही मनुष्य का जीवन दिनोंदिन बिगड़ता जाता है और संस्कार खराब हो जाते हैं। अत: हम एक अच्छी दिनचर्या की रूपरेखा बताते हैं।

अमृतवेले उठना

जैसे मकान की नींव सुदृढ़ होने से सारा मकान पक्का होता है, वैसे ही अमृतवेला सारी दिनचर्या की नींव है। उस समय जिसकी जैसी स्थिति हो, उसका सारे दिन की मानसिक अवस्था पर प्रभाव पड़ता है। अत: वास्तव में प्रात: तीन या चार बजे उठना बहुत अच्छा है। उस समय एकान्त एवं शान्त वातावरण होता है। मन भी दिनभर के कारोबार के सोच-विचार से फारिग (निवृत्त) और रातभर की नींद के बाद ताजा तथा शान्त होता है। इसलिए उस समय ईश्वरीय याद और लग्न में बैठने से मन सहज ही मग्न हो जाता है और जीवन में बहुत ऊँची प्राप्ति होती है। प्रात: तीन बजे उठने के लिए भले ही एक-दो घण्टे की नींद को त्यागना पड़ता है, परन्तु इस त्याग से लाभ हज़ारों गुणा ऊँचा है। परन्तु फिर भी यदि कोई व्यक्ति नित्य-प्रति उस समय उठ नहीं सकता तो उसे प्रात: चार बजे तो अवश्य उठना ही चाहिए। आखिर इतनी ऊँची कमाई के लिए कुछ तो समय निकालना ही चाहिए। वास्तव में देखा जाय तो थोड़े दिनों के अभ्यास से इस समय उठना संभव भी है।

अमृतवेले सबसे पहला संकल्प और सबसे पहली स्मृति

एक अच्छे पुरुषार्थी का नित्य-प्रति यह अभ्यास होना चाहिए कि जैसे ही आँख खुले सबसे पहले उसके मन में परमपिता परमात्मा की स्मृति आये। उसे दिनभर में चाहे कितने ही कार्य-व्यवहार क्यों न करने हों, परन्तु उसे यह बात तो अपने स्वभाव में ज़रूर अपना लेनी चाहिए कि प्रात: अमृतवेले जागते ही उसे सबसे पहले, और कोई संकल्प न आकर परमपिता परमात्मा ही की स्मृति आये और यह विचार आये कि – मैं एक आत्मा हूँ। इस संकल्प में कोई अधिक समय नहीं लगता, परन्तु इसका प्रभाव सारी दिनचर्या पर रहता है। उसे चारपाई से तुरन्त नहीं उठ जाना चाहिए और न ही उसे किसी कार्य में तुरन्त लग जाना चाहिए बल्कि वहीं बैठकर पहले पाँच-आठ मिनट तक इसी स्मृति में टिकना चाहिए कि – मैं एक ज्योतिर्बिन्दु रूप आत्मा हूँ। मैं ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, प्रेम के सागर परमपिता परमात्मा शिव की संतान हूँ। वह परमपिता सबके कल्याणकारी, सुखदाता और शान्तिदाता हैं। मैं भी उनकी तरह दूसरों को सुख देने और कल्याण करने के निमित्त बनूँगा। मैं परमधाम से ही इस सृष्टि-मंच पर आया था और वास्तव में मैं तो परमधाम अथवा ब्रह्मलोक ही का वासी हूँ जहाँ पवित्रता और शान्ति का ही वातावरण रहता है। यहाँ आने के बाद सतयुग और त्रेतायुग में मेरा जीवन पवित्र, दैवी और सम्पूर्ण सुख-शान्ति-सम्पन्न अर्थात् सोने-तुलय और चाँदी-तुल्य था। यहाँ राज्य-भाग्य प्राप्त था और कोई दु:ख नहीं था। द्वापरयुग तथा कलियुग में मैंने खूब भक्ति की और थोड़ा बहुत सुख भी भोगा। अब इस संगमयुग में मैंने ईश्वरीय ज्ञान द्वारा अलौकिक जन्म लिया है।

अब मैं जान चुका हूँ कि मैं परमपिता परमात्मा शिव की संतान (अमर पुत्र) हूँ अर्थात् मैं एक ज्योतिर्बिन्दु, अशरीरी आत्मा हूँ और अब मुझे शीघ्र ही परमधाम वापस जाना है। अहा! कितने सौभाग्य की बात है कि अब मैंने परमपिता परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ा है! निराकार, परमपिता परमात्मा ही मेरे पिता, शिक्षक और सद्गुरु हैं, जोकि मुझे इस मृत्युलोक से उस पार अपने शान्तिधाम में और बाद में वैकुण्ठ ले जा रहे हैं। अहा! अब मैं प्रजापिता ब्रह्मा की मुख-वंशावली, सच्चा ब्राह्मण अर्थात् पावन वत्स या ब्रह्माकुमार बना हूँ और इस ईश्वरीय ज्ञान तथा राजयोग द्वारा अपने जीवन को कमल फूल के समान पावन बना कर हीरे-तुल्य बन रहा हूँ।

इस प्रकार थोड़ा समय ज्ञान के इन मधुर रहस्यों का मनन करके, फिर शौच इत्यादि से निवृत्त होना चाहिए और नहा-धोकर विशेष रूप से ईश्वरीय स्मृति में बैठना चाहिए और फिर समय पर किसी भी निकट के ईश्वरीय सेवाकेन्द्र पर ज्ञान-कक्षा में जाना चाहिए। इसे अपने जीवन का आवश्यक कार्य, बल्कि इसे ज्ञान-रत्नों की अतुल कमाई का साधन समझ कर तथा अपने जन्म-जन्मान्तर के लिए सम्पूर्ण सुख-शान्ति का सहारा मान कर तथा आत्मा का स्नान या भोजन मान कर बहुत ज़रूरी समझना चाहिए।

प्रतिदिन ज्ञान-कक्षा में जाकर ज्ञान-योग का अभ्यास करना

वहाँ क्लास में पहले अपने मन को निराकार, ज्योति स्वरूप, बिन्दु रूप, परमधाम के वासी परमात्मा शिव की स्मृति में स्थित करके शान्ति, शक्ति, प्रकाश और पवित्रता के अनुभव में स्थित रहना चाहिए। उस एकटिक याद में बहुत ही आनन्द है और उसमें आत्मा में बल भरता है

तथा सारा दिन एक अलौकिक खुशी तथा उत्साह बना रहता है। फिर क्लास में जो ईश्वरीय ज्ञान सुनाया जाय उसे बहुत भावना से सुनना चाहिए, उसमें से मुख्य बातें अपनी नोट बुक में एक विद्यार्थी की तरह नोट करनी चाहिएँ और समय पर उनको पुन: देखना (दुहराना) चाहिए। परमपिता परमात्मा शिव की वाणी अथवा ज्ञान में जो भी शिक्षा अथवा सावधानी मनुष्य मात्र के लिए दी गई हो, उसे स्वयं पर लागू करके देखना चाहिए और यही दृष्टिकोण रखना चाहिए कि हमें अपने अवगुण रूपी पत्थर निकाल कर अपने जीवन में गुणों-रूपी रत्नों को भरना है। यह धारणा सदा बनी ही रहनी चाहिए। केवल ज्ञान-श्रवण के समय ही स्वयं को ईश्वरीय ज्ञान का विद्यार्थी नहीं मानना चाहिए बल्कि बाद में भी स्वयं को परमात्मा की एक संतान तथा ईश्वरीय विद्या का एक विद्यार्थी और देवपद की प्राप्ति का एक पुरुषार्थी मानते हुए अपने जीवन को सदा ऊँचा उठाने का और लोक-संग्रह का ध्यान रखते हुए दूसरों के आगे प्रैक्टिकल रीति आदर्श के रूप में चलने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

भोजन कैसा होना चाहिए और भोजन करते समय स्थिति कैसी होनी चाहिए?

प्रतिदिन परमपिता परमात्मा के महावाक्य सुनने के पश्चात् ज्ञान-श्रवण से लौटने के बाद घर के कार्य-व्यवहार को करना होता है तथा नाश्ता या भोजनादि करके अपने सांसारिक कर्त्तव्यों में लगना होता है। परन्तु भोजन करते समय भी उसे ईश्वरीय मस्ती तथा ईश्वरीय गुणों के मनन में तो रहना ही चाहिए। भोजन भी सात्त्विक और शुद्ध ही लेना चाहिए और भोजन करते समय इसी स्मृति में रहना चाहिए कि यह तो परमात्मा के भण्डारे से मैं प्रसाद अथवा शिव-भोग ही ले रहा हूँ। इसमें

मेरा मन सात्त्विक होगा और मेरा शरीर ईश्वरीय सेवा में तथा अपने कर्त्तव्य निभाने में ठीक रहेगा। भोजन में आसक्ति नहीं रहनी चाहिए और भोजन करते समय अनावश्यक बातें नहीं करनी चाहिएँ बल्कि आत्मा के स्वरूप में स्थित होकर, प्रभु के प्रेम में टिक कर साक्षी भाव से भोजन करना चाहिए।

कार्य-व्यवहार करते समय मन की अवस्था पर ध्यान रखना

कार्य-व्यवहार में रहते हुए भी यही स्मृति रखनी चाहिए कि – अब तो मैं सर्व भाव से परमपिता परमात्मा ही का हूँ। यह सब उन्हीं का है। मैं तो केवल निमित्त हूँ। उनके इस कार्य में मुझे किसी प्रकार का अहंकार नहीं करना चाहिए। मुझे काम, क्रोध, लोभ, मोह या अहंकार के वश होकर इस कार्य को अपवित्र नहीं करना है बल्कि सभी के साथ शुद्ध प्रेम, शान्ति, पवित्रता और मैत्री भाव से बरतना है। दैनिक कार्य को इस सृष्टि रूपी विराट नाटक का खेल समझ कर ही करना चाहिए। जैसे कोई व्यक्ति किसी नाटक में राजा का पार्ट करता है, परन्तु फिर भी उसे यह स्मृति रहती है कि – मैं वास्तव में राजा नहीं हूँ, बल्कि अमुक स्थान पर मेरा घर है और मैं अमुक व्यक्ति का बेटा हूँ, राजा के रूप में तो मैं वेष-भूषा धारण करके कुछ समय के लिए ही पार्ट बजा रहा हूँ, वैसे ही हरेक ज्ञानवान आत्मा को याद रखना चाहिए कि – भले ही मैं अभी दुकानदार अथवा अफसर अथवा व्यापारी के रूप में कर्त्तव्य कर रहा हूँ, परन्तु यह तो मेरा अल्पकाल का पार्ट है। मैं तो वास्तव में इन सबसे न्यारी एक आत्मा हूँ, ज्योतिर्बिन्दु हूँ। मैं तो परमधाम में रहने वाला हूँ और परमपिता परमात्मा की संतान हूँ। यह मित्र-सम्बन्धी अथवा लेन-देन करने वाले भी वास्तव में आत्माएँ ही हैं जोकि पार्टधारी हैं। इस प्रकार याद करने से

अवस्था अव्यक्त, न्यारी और प्यारी होगी।

हर प्रकार की स्थिति में संतुष्ट और उपरामचित्त

आजकल के सांसारिक जीवन के कार्य-व्यवहार में कई प्रकार के विघ्न और कई प्रकार की कठिनाइयाँ तो आती ही हैं और हानि-लाभ अथवा हर्ष-शोक की परिस्थितियाँ भी आती ही हैं, परन्तु ज्ञानवान मनुष्य का कर्त्तव्य है कि इनमें स्वयं से जो हो सके वह पुरुषार्थ करने के बाद जो परिणाम हो, उसे अपने किये कर्मों की प्रालब्ध अथवा भावी मानकर सदा संतुष्ट और उपरामवृत्ति से रहे और इसे एक नाटक की न्याईं जानकर इसकी हर्ष-शोक की परिस्थितियों से सदा न्यारा होकर रहे।

परन्तु यह सब तभी संभव होगा जब कार्य-व्यवहार करते समय भी वह परमपिता परमात्मा की स्मृति में टिका रहेगा। मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि कार्य-व्यवहार करते समय मेरा मन परमपिता परमात्मा की स्मृति में नहीं टिक सकता। वास्तव में तो हम हैं ही प्रभु की संतान और उन्हीं के पास ही हमें जाना है और उन्हें ही अपने कर्मों का हिसाब-किताब देना है, तो उनकी याद हमें क्यों नहीं करनी चाहिए। जबकि उनकी याद में रहने से ही सदा के लिए कल्याण होता है, तो उनकी याद हमें क्यों भूलती है? उनसे ही तो हमारा अत्यन्त स्नेह और प्यार होना चाहिए क्योंकि वही हमारे प्राणों को काल के पंजे से छुड़ाने वाले, हमें सदा सुख और शान्ति देने वाले और मुक्तिधाम तथा जीवनमुक्तिधाम ले चलने वाले परम सद्गुरु हैं। मनुष्य को उनकी याद भूलती तब है जब वह यह समझता है कि जो कार्य-व्यवहार मैं कर रहा हूँ, इसकी जिम्मेवारी मुझ पर है, इसका सम्बन्ध मुझसे है। अत: यह याद रखना चाहिए कि मैं

तो निमित्त हूँ, ट्रस्टी हूँ और मेरा नाता तो परमपिता परमात्मा से ही है; बाकी सभी के साथ तो जो मेरे पिछले जन्मों का हिसाब-किताब रहा हुआ है, उसे ही मैं चुका रहा हूँ।

इस प्रकार का पुरुषार्थ करते-करते जब तक ईश्वरीय स्मृति परिपक्व हो तब तक उसका अभ्यास यह समझ कर नहीं छोड़ देना चाहिए कि यह तो कठिन है, यह नहीं हो सकता। यदि बार-बार अपना स्वरूप और लक्ष्य भूल जाता है और मन परमपिता परमात्मा की स्मृति से हटकर संसार में फँस जाता है तो उसे देखकर निराश नहीं हो जाना चाहिए बल्कि यह सोचना चाहिए कि – मेरे तो अज्ञान के संस्कार बहुत दृढ़ हो गए हैं, अत: मुझे तो अपने पुरुषार्थ को और भी तेज़ करना चाहिए। पुरुषार्थ को छोड़ने से तो सद्गति होगी नहीं। आखिर अपने जीवन को सुधारने के लिए यह पुरुषार्थ करना तो पड़ेगा ही। अत: अब जबकि संसार का विनाश निकट है और परिस्थितियाँ अति विकट हैं तो मुझे इस पुरुषार्थ में अच्छी तरह लग जाना चाहिए। स्व-स्थिति से ही तो परिस्थिति पार होगी।

परिस्थिति देखकर तथा विनाश को निकट आता देखकर तो मनुष्य को वैसे भी परमपिता परमात्मा की स्मृति बार-बार अथवा निरन्तर ही आती है। अत: जबकि एटम और हाइड्रोजन बम बन चुके हैं और अन्न-संकट, धन-संकट आदि की परिस्थितियाँ भी हम देख रहे हैं, तब तो हमें परमपिता परमात्मा की बहुत याद आनी चाहिए। अत: यह बहाना नहीं बनाना चाहिए कि – हमारी परिस्थितियाँ ठीक नहीं हैं, हमारे आसपास का वायुमण्डल अनुकूल नहीं होता। आजकल की परिस्थितियाँ तो हमारा ध्यान परमपिता परमात्मा की तरफ नहीं खिंचवाती हैं। तब भी यदि आपको

वायुमण्डल अनुकूल नहीं लगता तो उसे ठीक करना चाहिए, न कि उसके अनुसार स्वयं भी ढल जाना चाहिए। जबकि एक अगरबत्ती सारे कमरे को सुगन्धित कर देती है तो आपका पुरुषार्थ, आपके योग की सुगन्धि, दिव्य गुणों की खुशबू भी, आज नहीं तो कल अवश्य सारे वायुमण्डल को सुगन्धित करके रहेगी, ऐसा आपको निश्चय होना चाहिए।

हर घण्टे में कम-से-कम दस मिनट ईश्वरीय स्मृति में स्थित

यह सब पुरुषार्थ करने पर भी यदि आप बहुत अधिक समय ईश्वरीय स्मृति में स्थित नहीं हो सकते तो प्रारम्भिक दिनों में कोशिश करके हर घण्टे में पाँच-दस मिनट अवश्य ऐसे निकालने चाहिएँ जिनमें आपको विशेष रूप से अपने स्वरूप को विचारना चाहिए और परमपिता परमात्मा शिव को बहुत स्नेह और लग्न से याद करना चाहिए। इतना तो कोई भी कर सकता है। जब किसी व्यक्ति को कोई डॉक्टर कहता है कि – यह होम्योपैथिक औषधि हर दो घण्टे के बाद खाया करना तो वह व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के ख्याल से हर दो घण्टे के बाद याद करके उस दवाई को खाता ही है। जिस ईश्वरीय याद से मनुष्य जन्म-जन्मान्तर के लिए सदा निरोगी, सदा स्वस्थ और सदा सुखी और अतुल धन-धान्य सम्पन्न हो जाता है, उसका प्रयोग करना भी तो नहीं भूलना चाहिए। हम प्राय: देखते हैं कि जिन व्यक्तियों को पान खाने की आदत होती है अथवा अन्य किसी वस्तु की आदत पड़ जाती है, वे भी हर दो घण्टे में उसे याद कर उसका सेवन करते हैं तो क्यों न हम भी ईश्वरीय स्मृति की शुद्ध आदत स्वयं में डाल लें। इस आदत पर तो कुछ खर्च भी नहीं होता बल्कि और अधिक स्थायी आनन्द की प्राप्ति होती है।

वैसे भी दिनभर में बहुत-से कार्य ऐसे होते हैं जिनमें हमें अपनी बुद्धि को पूरी तरह नहीं लगाना पड़ता। उन कार्यों को करते समय, यदि हम चाहें तो परमपिता परमात्मा की स्मृति में रह सकते हैं। चलते-फिरते या अन्य कोई कार्य करते समय परमात्मा की स्मृति का अभ्यास भी चलता रह सकता है। परन्तु आज मनुष्य इस बात पर ध्यान ही नहीं देता और ऐसे कार्य करते समय व्यर्थ के संकल्प करता है। कार्य के अलावा जो थोड़ा-थोड़ा समय बीच-बीच में हमें मिलता है, यदि उसका भी ईश्वरीय स्मृति के लिए सदुपयोग करें तो सारे दिनभर में हमारे योग का चार्ट काफी अच्छा हो सकता है। अत: परमपिता परमात्मा कहते हैं कि – हे वत्स, यदि मुझ पिता को तुम सारा समय नहीं दे सकते तो कम-से-कम जिस समय को आप चिन्ता में या व्यर्थ चिन्तन में लगा कर अपना अकल्याण करते हो, उस समय को तो मेरी स्मृति में लगाओ। सारे दिनभर में यदि आप आठ घण्टे व्यवहार और कारोबार में खर्च करते हैं और शेष आठ घण्टे आराम, नींद, स्नान आदि में खर्च करते हैं तो भी आपको शेष आठ घण्टे में मेरी स्मृति में टिक कर अपना कल्याण तो करना ही चाहिए।

सांयकाल में पुरुषार्थ

इस प्रकार अपने दिन के कारोबार को समाप्त करने के बाद अर्थात् दुकान से या दफ्तर से लौटने के बाद, कुछ आराम करके अथवा घर का कार्य करके, मुँह-हाथ धोकर कछुए की भाँति कर्मेन्द्रियों को समेट कर पुन: विशेष रूप से अलग अथवा सभी घरवालों के साथ, परमपिता परमात्मा की स्मृति में बैठना चाहिए। इस तरह का अभ्यास न करने से तो मन सारा दिन बे-लगाम घोड़े की तरह इधर-उधर भटकता ही रह जाता है। जो मनुष्य बार-बार शरीर-भान से न्यारा होकर, अपने मन को समेट

कर उस परमपिता परमात्मा की स्मृति में टिकाने का पुरुषार्थ करता है, वही योग की सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।

सांयकाल के योग का भी एक विशेष प्रकार का प्रभाव रहता है। इससे पुन: मन ताजा और वृत्ति सात्त्विक हो जाती है। अत: सांयकाल याद में बैठने का भी अपना नियम बना लेना चाहिए। फिर खाने-पीने के कार्य से तथा और जो भी कार्य हों उनसे निवृत्त होना चाहिए क्योंकि साँसारिक कर्त्तव्यों को निभाना भी अपना कर्त्तव्य है। परन्तु साँसारिक कर्त्तव्यों को निभाने का अर्थ व्यर्थ की गपशप लगाना या इधर-उधर की फालतू बातों में समय गँवाना नहीं है। हाँ मनुष्य को मनोरंजन करने की आवश्यकता महसूस हो तो वह भी ऐसा होना चाहिए जिससे कि कोई बुरा संस्कार न बने और बुरी आदत न पड़े।

यह सब करने के बाद रात्रि को ज्ञान-चर्चा करके, ठीक समय पर, लगभग दस बजे विश्राम के लिए तैयार हो जाना चाहिए। सोने से पहले कुछ समय अवश्य ही परमप्रिय परमपिता परमात्मा की स्मृति में बैठना चाहिए। याद करते-करते सो जाने से निद्रा भी सतोगुणी होती है और नींद में कोई दोष भी नहीं होते या बुरे संस्कार तंग नहीं करते।

❑

दूसरी युक्ति

दिव्य गुणों की धारणा

जीवन को हीरे-तुल्य बनाने का अर्थ – अपने जीवन में दिव्य गुण धारण करना और आसुरी लक्षणों को छोड़ना है, क्योंकि अब जीवन में जो आसुरी लक्षण हैं, उन्हीं के कारण ही तो मनुष्य का जीवन कौड़ी-तुल्य और दु:खी बना है। दिव्य गुणों की धारणा पर ध्यान दिये बिना मनुष्यात्मा का न तो परमपिता परमात्मा से निर्विघ्न रीति से योग लग सकता है और न ही मनुष्य योगी जीवन का अलौकिक आनन्द लूट सकता है। अत: इस जीवन में सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए तथा भविष्य में भी सदा सुखी दैवी जीवन प्राप्त करने के लिए अभी से दिव्य गुणों की धारणा पर पूरा-पूरा ध्यान देना ज़रूरी है।

पवित्रता और जितेन्द्रियता

दिव्य गुणों में पवित्रता सबसे मुख्य है। पवित्र मनुष्य ही प्रभु के प्यार को प्राप्त कर सकता है। अत: परमपिता परमात्मा से प्रेम करने वाले मनुष्य को चाहिए कि अपने तन-मन और धन की पवित्रता पर पूरा ध्यान दे। उसे चाहिए कि तन और वस्त्रों को स्वच्छ रखे और जब कभी दीर्घशंका, शौच से निवृत्त हो अर्थात् मल-विसर्जन करे, उसके बाद स्नान करके या कम-से-कम शरीर को गीले वस्त्र से पोंछ करके, स्वच्छ वस्त्र धारण करे और मन की स्वच्छता के लिए पवित्र भोजन करे। मन को निवृत्त रखे और विशेष बात यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करे। अपने जीवन को कमल-पुष्प के समान बनाना ही वास्तव में जीवन को पवित्र बनाना है। परन्तु अपने को एक कर्मयोगी समझने से, ईश्वरीय विद्या का विद्यार्थी मानने से, परम पावन परमपिता परमात्मा की संतान मानने से और श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण आदि देवी-देवताओं का वंशज मानने से ही जीवन में पवित्रता

की धारणा हो सकती है, वर्ना इसका अन्य कोई साधन नहीं है। अत: इस धारणा में रहते हुए हमें पवित्र रहना चाहिए और यदि मन में विक्षेपता आये भी तो कर्मेन्द्रियों द्वारा कोई बुरा कर्म नहीं करना चाहिए बल्कि कर्मेन्द्रियों को अपने नियंत्रण में रखना चाहिए।

हमें अब यह याद रखना चाहिए कि अब जबकि हमने ईश्वर से लग्न लगाई है, इन आँखों द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोह या अहंकार की दृष्टि से हम किसी को नहीं देख सकते, मुख द्वारा अपशब्द, निन्दा या विकारी बोल नहीं बोल सकते और इस प्रकार, कर्मेन्द्रियों द्वारा किसी को भी दु:ख देने का कर्म नहीं कर सकते, वर्ना अब ज्ञान लेने के बाद यदि हमने कोई बुरा कर्म किया तो हमें सौ गुणा दण्ड भोगना पड़ेगा।

अन्तर्मुखता

यूँ तो हरेक दैवी गुण का अपना-अपना महत्त्व है परन्तु फिर भी अन्तर्मुखता का महत्त्व तो बहुत अधिक है। मनुष्य को आत्मा के स्वरूप की पहचान दी ही इसलिए जाती है कि वह अन्तर्मुखता का गुण धारण करे ताकि उसके जीवन में अलौकिक सुख और शान्ति आये। अन्तर्मुखता को धारण करने का अर्थ है – देह के अन्दर जो आत्मा है, उसके स्वरूप का तथा उसके पिता परमात्मा का मनन करना, कानों द्वारा आत्मा ही की उन्नति की बातें सुनना, मुख द्वारा उस ही की चर्चा करना, आँखों द्वारा अन्य मनुष्यों को देखते हुए भी मन की आँखों से उन्हें आत्मा के ही रूप में देखना। जो मनुष्य बाह्यमुखी होता है अर्थात् जिसकी दृष्टि और वृत्ति अन्तरात्मा की ओर नहीं होती, उसका मन और उसकी कर्मेन्द्रियाँ सदा विषय-वासनाओं ही की ओर भागती हैं और वह व्यक्तियों तथा पदार्थों के नाम-रूप को देखकर मोहित, विचलित अथवा विकृत होता रहता है और इसलिए उसके पिछले विकर्मों का भी विनाश नहीं होता और आगे

के लिए भी विकर्मों का खाता बनता ही रहता है। परन्तु जो मनुष्यात्मा परमपिता परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त करके, मन को आत्मा के स्वरूप में तथा परमपिता परमात्मा की स्नेहयुक्त स्मृति में टिकाता है, उसकी बुद्धि और वृत्ति बाहर विषय-पदार्थों में नहीं भटकती। इसलिए उस मनुष्य पर माया का वार नहीं होता। यदि कोई मनुष्य उससे मान-अपमान की या अपकार की वार्ता करता है या लोभ और क्रोधादि के लिए लालायित अथवा उत्तेजित करता है तो अन्तर्मुखी मनुष्य उसे सुनते हुए भी नहीं सुनता क्योंकि वह तो एक न्यारे और ऊँचे सुख में टिका रहता है। अन्तर्मुखी मनुष्य को स्वरूप स्थिति के अभ्यास द्वारा देह से न्यारा होने की जो टेर पड़ जाती है, उसके फलस्वरूप वह दुष्ट की दुष्टता और अपकारी के अपकार को ग्रहण नहीं करता। अत: उसे अशान्ति और दु:ख नहीं छूते। अत: चूँकि अन्तर्मुखी मनुष्य न बुरा सुनता है और न बुरा बोलता है और न बुरा सोचता है और न बुरा करता है और न ही उस तरफ ध्यान देता है, इसलिए उसका मन रूपी हंस भी शान्ति के सरोवर में सदा शीतलता के मोती चुगता रहता है। इसलिए अब हमें चाहिए कि हम भी हीरे-तुल्य अनमोल गुण अन्तर्मुखता को ग्रहण करके अपने जीवन को हीरे-तुल्य बनाएँ क्योंकि इससे ही जीवन में सहनशीलता आदि गुण भी आते हैं और जीवन दिव्य भी बनता है।

सहनशीलता

ज्ञान-मार्ग पर चलते-चलते अनेक प्रकार की जो विपरीत परिस्थितियाँ सामने आती हैं और लोगों से जो निन्दा या कटु आलोचना सुननी पड़ती है, उसे सहन करने में ही हमें अपना कल्याण मानना चाहिए क्योंकि ये हमारी ही परीक्षा के लिए आती हैं ताकि हम देख सकें कि हमारे मन में अभी क्रोध या आवेश के संस्कार तो नहीं हैं और परमपिता परमात्मा से

हमारी लग्न इतनी कच्ची तो नहीं है कि हम थोड़ी-सी कठिनाइयों के घेरे में फँस कर अपने लक्ष्य से हट जाते हैं। अत: हमें सब प्रकार की परिस्थितियों को परमात्मा के स्नेह में सहन करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि – जबकि लौकिक नातों में भी मनुष्य अपने मित्र-सम्बन्धियों के लिए अथवा किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहन कर लेता है तो क्या हम अपने परमप्रिय परमपिता परमात्मा के स्नेह के लिए अथवा अपने जीवन को ऊँचा उठाने तथा भविष्य में अतुल प्राप्ति करने के लिए थोड़ा-कुछ सहन नहीं कर सकते? हमारे मार्ग में तन-मन-धन की जो परीक्षायें अथवा विघ्न आयें, हमें यह सोचकर उन्हें खुशी-खुशी से सहन करना चाहिए कि – ये तो हमारे अपने ही पूर्व कर्मों की प्रालब्ध के रूप में हमारे सामने आ रहे हैं तो हम क्यों न एक बार इनका सामना करके सदा के लिए इनसे छुटकारा पा लें? हमें दूसरे के अवगुणों तथा बुरे कर्मों को देखकर स्वयं उत्तेजित या क्रोधान्वित नहीं होना चाहिए बल्कि सदा अपने इस लक्ष्य को सामने रखना चाहिए कि हमें तो अपना जीवन हीरे-तुल्य बनाना है, हमें तो गुण-ग्राहक बनना है, अवगुणों को तो अपने जीवन से निकालना है।

गुणग्राहकता

हमें यह सोचना चाहिए कि – हरेक मनुष्य में अवगुण के अतिरिक्त कुछ तो गुण भी हुआ करते हैं, अत: मुझे उन गुणों को ही देखकर उन्हें अपने जीवन में धारण करना है। मैं दूसरों के अवगुणों का ग्राहक नहीं बनूँगा, बल्कि गुण रूपी रत्नों ही का ग्राहक बनूँगा। मनुष्य को यह तो मालूम नहीं कि किस क्षण उसके जीवन का अन्त हो जाए, अत: मैं दूसरे के दोषों का चिन्तन नहीं करूँगा ताकि कहीं मेरी दुर्गति न हो जाय। दूसरे मनुष्यों में जो दोष हैं, उनका दण्ड वे पायेंगे, मैं उन दोषों का चिन्तन करके

दोषी और दु:ख का भागी क्यों बनूँ? मैं तो अब दूसरों के अवगुणों को न देखकर स्वयं सदा प्रफुल्लित और हर्षित रहूँगा और उन्हें मीठी दृष्टि से देखूँगा और उनका शुभ-चिन्तक बनकर उनके दोष को दूर करने का प्रयास करूँगा परन्तु स्वयं को उनके अवगुणों से दु:खी नहीं करूँगा। यदि मुझे दूसरे किसी का दोष दिखाई दे भी जायेगा तो भी मैं अपने मन को टटोल कर देखूँगा कि किसी हद तक वह अवगुण मुझमें छिपा हुआ तो नहीं है? मैं तो परमपिता परमात्मा के गुणों का ग्राहक हूँ, मैं मनुष्यों के अवगुणों का ग्राहक नहीं हूँ। अवगुणों से तो मैं निकलना चाहता हूँ, फिर भला मैं उनके अवगुणों का दर्शन क्यों करूँ? मैं तो अब प्रभु के अर्पण हो चुका हूँ और इसलिए अब अपने में अवगुण लाने का पाप नहीं कर सकता।

अर्पणमयता

अपने जीवन से विषय-विकारों और आसुरी गुणों को निकालने के लिए सबसे प्रमुख युक्ति है – परमपिता परमात्मा के प्रति अर्पणमयता। अब हम जैसे भी हैं, हमें इसी क्षण से लेकर यह समझना चाहिए कि – मेरा तो कुछ भी नहीं बल्कि अब मैं अपना सब-कुछ, परमपिता परमात्मा शिव के अर्पण करता हूँ। अब हमें यह निश्चय करना चाहिए कि – अब मेरा तन, मन और धन सब परमपिता परमात्मा का ही है अर्थात् अब इन्हें उनकी बनाई हुई आज्ञाओं के अनुकूल चलाना है।

जो भी मनुष्य अपने जीवन को हीरे-तुल्य बनाना चाहता है, उसे चाहिए कि अपना कौड़ी-तुल्य जीवन परमात्मा के अर्पण करके अब सब-कुछ ईश्वर की अमानत समझे और उसे पवित्र आचरण से अर्थात् निर्विकारी रीति से कर्त्तव्य-पालन में तथा ईश्वरीय सेवा में लगावे। इस तरीके से मनुष्य अपने तन-मन और धन की ममता मिटा सकता है और

अपने सम्बन्धियों में जो मोह है वह भी हटा सकता है। वर्ना, मनुष्य की बुद्धि अपने तन-मन-धन और सम्बन्धियों की तरफ जाती रहेगी और वह ईश्वरीय स्मृति में उच्च स्थिति नहीं प्राप्त कर सकेगा। अत: घर, सम्बन्धियों और धन में ममता और मोह को मिटाने के लिए जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं है बल्कि इन्हें परमपिता परमात्मा ही के अर्पण करके स्वयं को निमित्त (ट्रस्टी) मानना ही सर्वश्रेष्ठ युक्ति है। इससे मनुष्य के जीवन से विकार और कड़वापन मिट जाता है और उसके स्थान पर पवित्रता तथा मधुरता आती है।

मधुरता

ईश्वरीय ज्ञान द्वारा जीवन में मधुरता आना स्वाभाविक है क्योंकि यह ज्ञान है ही माया के कड़वेपन अथवा विषय को निकालने के लिए। परन्तु यह मधुरता तभी आ सकती है जब मनुष्य इस सृष्टि को एक विराट नाटक की दृष्टि से साक्षी होकर देखे और यह समझे कि – बनी-बनाई ही बन रही है और सब अपने-अपने विभिन्न संस्कारों ही के अनुसार अपना पार्ट बजा रहे हैं। इस रहस्य को समझने से मनुष्य दूसरों से कड़वा नहीं बोलता बल्कि उनके कल्याण के विचार से उन्हें भी ज्ञान के मधुर बोल, दिव्य गुणों की मीठी-मीठी बातें और परमपिता परमात्मा के मधुमय चरित्र ही सुनाता है और स्वयं भी गद्‌गद् होता है तथा दूसरों को भी इससे आनन्दित करता है।

वह दूसरे मनुष्यों पर कड़वे शब्द-रूपी पत्थर नहीं मारता बल्कि ज्ञान के मधुर बोल-रूपी पुष्पों से उनकी झोली भर देता है। मनुष्य के स्वभाव में कड़वापन तो विकारों ही के कारण होता है। इन्हीं के कारण वह दूसरों को अपना शत्रु, अपकारी, अकल्याणकारी अथवा हानिकारक मानता है। परन्तु जब वह मनुष्य ज्ञान के इस अनमोल रहस्य को समझ

जाता है कि आत्मा का शत्रु तो उसके अपने ही बुरे कर्म अथवा विकार हैं, जो दूसरों के द्वारा प्रालब्ध के रूप में सामने आते हैं, तो वह दूसरों को अपना शत्रु नहीं मानता बल्कि अपने ही कर्मों को श्रेष्ठ बनाने की कोशिश करता है और स्वयं में ही प्रेम, सद्भावना और सद्गुण लाकर माया रूपी शत्रु को सदा के लिए जीतने का पुरुषार्थ करता है। वह अपनी मधुरता से दूसरों को भी आकृष्ट करके ईश्वर की ओर उनका ध्यान खिंचवाने का प्रयत्न करता है।

हर्षितमुखता

ज्ञान लेने के बाद और यह निश्चय करने के बाद कि – मैं तो त्रिलोकीनाथ, सर्वशक्तिवान, पतित-पावन, शान्ति और आनन्द के सागर, स्वर्ग के राज्य-भाग्य विधाता, परमपिता परमात्मा शिव की संतान हूँ, हमारे मुख पर कभी भी शोक अथवा चिन्ता के चिह्न नहीं आने चाहिएँ। जबकि सर्व-समर्थ परमपिता, परमशिक्षक और परमसद्गुरु परमात्मा हमें शान्तिधाम और वैकुण्ठ में ले चल रहे हैं तो हमारे हर्ष का पारावार नहीं रहना चाहिए। जबकि हम पवित्र और योगयुक्त बन रहे हैं और अपने भाग्य को भी बहुत ऊँचा बना रहे हैं तब तो चिन्ता अथवा शोक की बात ही क्या रह जाती है। यदि हमारे सामने कोई दुर्घटना, कोई रोग, कोई हानि आदि की परिस्थितियाँ आती भी हैं तो भी ज्ञान के आधार पर हमें यही सोचना चाहिए कि यह तो हमें आखिरी सलाम करने आई है। अब तो यह हमारा पीछा छोड़ने ही वाली है, क्योंकि अब हमने योगबल द्वारा इसका अन्त करने का तरीका समझ लिया है। अत: यह सोचकर कि अब तो हमारे कर्मों का लेखा-जोखा समाप्त हो रहा है, हमारा ऋण हमारे सिर से उतर रहा है, हमें सदा हर्षित ही रहना चाहिए। चिन्ता तो केवल यही होनी चाहिए कि अब हमें स्वयं को तथा अन्य मनुष्यों को भी पवित्र

और योगयुक्त बनाना है। जिसे यह शुभ चिन्ता अथवा लग्न लग जाती है, उसके पास और चिन्ता के लिए भला समय ही कहाँ है? जो मनुष्य ज्ञान का चिन्तन करता रहता है, उसकी बुद्धि में दूसरी चिन्ता आने का अवकाश ही कहाँ है? वह तो ईश्वर के एक बल और एक भरोसे पर टिक कर, निश्चिन्त और निर्भय होकर पुरुषार्थ में तत्पर रहता है और अतीन्द्रिय सुख पाता है।

निर्भयता

जो मनुष्य सच्चे दिल से परमपिता परमात्मा का सहारा लेता है और अपना तन-मन और धन उसी के अर्पण कर देता है, उसे भला किसका भय हो सकता है? जो व्यक्ति दूसरे का सदा शुभ सोचता है और अन्य लोगों की ईश्वरीय सेवा में लगा रहता है, उसे भला भय कैसे हो सकता है? भय उसको होता है जो स्वयं को आत्मा निश्चय न कर देह मानता हो अथवा जिसकी किसी वस्तु में ममता हो। वर्ना सर्वशक्तिवान परमात्मा की शरण लेने वाला व्यक्ति अडोलचित्त और निर्भय होकर विचरता और ज्ञान के इसी मधुर रहस्य के मनन-चिन्तन में रहता है कि – जो कुछ होना है वह तो होकर ही रहेगा और होगा भी वही जो मेरे पूर्व कर्मों का फल होगा, इसलिए मुझे किसी भी परिणाम से भयभीत न होकर अपने कर्त्तव्य को ठीक रीति से करते रहना चाहिए और शेष के लिए रक्षक परमपिता परमात्मा ही की सहायता पर निर्भर रहना चाहिए और साक्षी होकर कर्त्तव्य करते चले जाना चाहिए।

साक्षी

साक्षी होकर जीवन व्यतीत करने से ही जीवन प्यारा और न्यारा बनता है। साक्षी मनुष्य पर हर्ष-शोक अथवा मान-अपमान की परछाई नहीं पड़ती। साक्षी मनुष्य इसी जीवन में जो आनन्द ले सकता है, वह

करोड़पति व्यक्ति भी नहीं ले सकता।

परन्तु मनुष्य की अवस्था साक्षीपन की तभी हो सकती है जब वह इस संसार को इस प्रकार देखे जैसे कि यह एक विराट नाटक धीरे-धीरे चल रहा है और इसमें भिन्न-भिन्न नाम-रूप वाले एक्टर एक बनी-बनाई योजना के अनुसार अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं और वह उन्हें साक्षी होकर देख रहा है। वह अपने जीवन में आने वाली घटनाओं को भी नाटक की घटनायें ही समझ स्वयं (आत्मा) को भी उनका साक्षी माने, तभी वह सदा आनन्द की स्थिति अथवा सदा नारायणी नशे में रह सकता है। साक्षी अवस्था में मनुष्य के मन में हर वृत्तान्त आने के बाद यही विचार आता है कि – यह पार्ट तो मैंने असंख्य बार देखा अथवा किया है और यह तो भावी बन रही है और जो जैसे पुरुषार्थ कर रहा है, उसके प्रालब्ध की वैसी फिल्म बन रही है, जोकि आगे चलकर उसके सामने आयेगी। वह न्यारा होकर अपने तथा दूसरों के पार्ट को देखता है। मित्र-सम्बन्धियों के साथ बरतते हुए भी उसके मन में सदा यही रहता है कि – ये तो इस विराट नाटक में सह-पार्टधारी हैं। हैं तो ये भी आत्माएँ ही परन्तु शरीर रूपी वेशभूषा धारण करके ये कुछ समय के लिए मेरे साथ पार्ट बजा रही हैं। जब इनका मेरे साथ पार्ट समाप्त हो जायेगा तो हम और ये बिछुड़ जायेंगे और अब तो वह दिन आने ही वाला है जबकि इस नाटक का अन्त एटम और हाइड्रोजन बमों के धमाकों के साथ होने ही वाला है और हम सभी अपना नाटक पूरा करके परमधाम को लौटने वाले हैं। अत: वह ऐसा अनुभव करता है कि अब जो पार्ट चल रहा है, यह तो अन्तिम पार्ट है, इसके बाद तो यह खेल खत्म ही है। इस विचार से उसकी बुद्धि इस संसार के विषय-पदार्थों से हट कर सिमट जाती है और उसके पाँव मानो इस धरती से उठ जाते हैं और वह ऐसा अनुभव करता है कि अब

तो उसके जीवन-रूपी जहाज का लंगर इस संसार तट से उठ चुका है और वह उस पार जा रहा है। वह नम्र स्वभाव से अपने जीवन को उच्च बनाने में ही लगा रहता है।

नम्रता

ज्ञानवान मनुष्य अपने जीवन पर ध्यान देने के कारण जानता है कि अभी तो उसे स्वयं में से कई त्रुटियाँ निकाल कर अच्छे गुण भरने हैं और परमपिता परमात्मा की निरन्तर स्मृति में स्थिति प्राप्त करने का काफी अभ्यास करना है। अत: वह यह देखकर कि वह स्वयं भी सम्पूर्ण नहीं हुआ, वह दूसरों से भी नम्रता से व्यवहार करता है। वह जानता है कि दूसरे भी संस्कारों के वश हैं और उन्हें भी उन्नति करने में अभी समय लगेगा। वह उनकी कमियों को देख स्वयं का अहंकार नहीं करता और उनसे रुष्ट नहीं होता अथवा उनसे घृणा नहीं करता बल्कि उन्हें भी उन संस्कारों के बंधन से निकाल कर आगे बढ़ाने की भावना से अपने स्नेह का सहारा देता है और यदि कोई उसे उसकी भूल बताता है तो वह बुरा न मानकर, उसे अपनी उन्नति के लिए लाभकारी मानता है और उस व्यक्ति को अपना शुभ चिन्तक समझता है।

यदि कोई अपमान करता है अथवा बात नहीं मानता तो ज्ञानवान मनुष्य अपना अभिमान नहीं दिखाता क्योंकि वह जानता है कि दूसरा व्यक्ति जो-जो खोटे कर्म कर रहा है, वह मनुष्य अपने किये का फल स्वयं पायेगा। वह स्वयं अपने मन में घृणा, अहंकार या कुटिलता नहीं लाता बल्कि सरलता ही से व्यवहार करता है।

सरलता

मनुष्य के मन की सरलता और सच्चाई पर ही सच्चा साहिब परमात्मा राज़ी होता है। मनुष्य जितना सच्चा, सरल स्वभाव और निष्कपट और

स्पष्ट होता है, उसे परमपिता परमात्मा के स्वरूप का अनुभव भी उतना ही स्पष्ट होता है। मनुष्य के मन की सरलता ही परमात्मा को भी उसकी ओर खींचती है तथा अन्य मनुष्यों को उसकी ओर आकृष्ट करती है। इसलिए सरलता ही ज्ञानवान मनुष्य का गुण है क्योंकि सरलता के बिना तो जीवन में ज्ञान की धारणा हो नहीं सकती और सच्चे आत्मिक सुख का अनुभव भी नहीं हो सकता।

दृढ़ता, आत्म-विश्वास और पुरुषार्थ में तीव्रता

यह सोचकर कि – अभी तो मैं पुरुषार्थी हूँ, इसलिए कुछ भूल हो जाती है, हमें यह भूल नहीं करते रहना चाहिए, बल्कि अब हमें यह सोचना चाहिए कि पुरुषार्थी का अर्थ तो यह है कि विकारों को जीतने, कर्मेन्द्रियों को कण्ट्रोल में रखने तथा योगयुक्त रहने की हम पर पूरी ज़िम्मेवारी है। इस प्रकार फिर भी यदि कभी हम से भूल हो जाती है तो हमें दृढ़ संकल्प लेना चाहिए कि अब के बाद हम से यह भूल फिर न होगी। केवल दृढ़ संकल्प ही नहीं लेना है बल्कि आत्म-विश्वास से पुरुषार्थ में तीव्रता भी लानी है।

ऊपर कुछेक दिव्य गुणों का उल्लेख किया गया है जिनको धारण करके हमें अपने जीवन को हीरे-तुल्य बनाना है। इन गुणों के अतिरिक्त हमें मृदुता, गम्भीरता, संतोष, दया, धैर्य और दूसरों के प्रति शुद्ध प्रेम तथा शुभ भावना इत्यादि सद्गुण भी अपने जीवन में लाने चाहिएँ। यह पुरुषार्थ कठिन नहीं है।

❑

तीसरी युक्ति

नियमों का पालन

अपने जीवन को हीरे-तुल्य बनाने के लिए, कर्मों को श्रेष्ठ बनाने के लिए अथवा इस जीवन में योग का आनन्द लूटने के लिए और बाद में भी मुक्ति तथा जीवनमुक्ति की प्राप्ति के लिए हमें उन नियमों का अवश्य पालन करना चाहिए, जिनके लिए अब स्वयं परमपिता परमात्मा शिव ने हमें प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा आज्ञा दी है। उन नियमों का पालन किये बिना न तो हम ज्ञान और योग के मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं, न हम सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकते हैं और न हम आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

ब्रह्मचर्य का पालन

उन नियमों में से पहला नियम है – ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना न तो ईश्वरीय स्मृति में स्थिति प्राप्त हो सकती है और न ही क्रोधादि अन्य विकार शान्त हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य की बुद्धि स्वच्छ होती है और मनुष्य में वह आध्यात्मिक शक्ति आती है जिससे वह अन्य विकारों को जीत सकता है अथवा उनका सामना कर सकता है। अत: काम वासना को महाशत्रु मानकर और ब्रह्मचर्य को ही अपना मित्र जानकर हमें काम विकार का बहिष्कार और मनसा, वाचा और कर्मणा ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए। हमें यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि पावन को पतित करने वाला अथवा देव-पद से गिरा कर नर्क में धकेलने वाला शत्रु काम विकार ही है। यही मनुष्य के स्वास्थ्य को और उसकी आयु को नष्ट करने वाला और उसे कायर तथा कमजोर बनाने वाला है।

अत: अब हमें सम्बोधित करके, हमारे कल्याण के लिए परमपिता

परमात्मा शिव कहते हैं – हे वत्स, जन्म-जन्मान्तर तो आप अपने लौकिक माता-पिता से विकारों की नकल करते आये हो परन्तु इन्हीं विकारों से तुम सतयुगी सुखमय जीवन और दैवी राज्य-भाग्य गँवा बैठे हो। इसी विकार के कारण ही तुम महा दु:खी हुए हो। अत: अब तो आप इस जन्म में मुझ परमपिता से पवित्रता की विरासत ले लो। हे वत्स, तुम जन्म-जन्मान्तर तो मुझसे प्रार्थना करते आये हो कि – हे पतित-पावन परमात्मा, हमें इन विषय-विकारों से छुड़ाओ, परन्तु आश्चर्य की बात है कि अब जबकि मैं तुम्हें इनसे छुड़ाने के लिए परमधाम से आया हूँ तो तुम इन्हें छोड़ते ही नहीं हो? मैं तो तुमसे यहाँ खराब चीज़ छोड़ने को कहता हूँ परन्तु तुम इसे दृढ़ता से पकड़ कर बैठे हो? क्या तुम काम रूपी मगरमच्छ पर सवार होकर भवसागर से पार होने की आशा लगाये बैठे हो?

अब संकटकालीन परिस्थिति है, इसलिए पवित्र बनो

कल्याणकारी परमपिता शिव कहते हैं – हे वत्स, वर्तमान परिस्थिति संकटकालीन परिस्थिति है। अब इस कलियुगी सृष्टि का महाविनाश निकट है। अब इस अन्तिम जीवन का थोड़ा समय शेष है। अब मेरी आज्ञा है कि पवित्र बनो, ब्रह्मचर्य का पालन करो और काम रूपी महा शत्रु को मत घुसने दो, क्योंकि अब मुझे यहाँ सतयुगी श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण का दैवी स्वराज्य स्थापित करना है अथवा अब मुझे इस सारे भारत को वेश्यालय से शिवालय अथवा देवालय बनाना है। हे वत्स, अब इस सृष्टि के महाविनाश से भी सब विकार छूट तो जाने ही हैं, परन्तु यदि तुम स्वेच्छा से तथा योग की लग्न में ब्रह्मचर्य का पालन करोगे तो आने वाले दैवी स्वराज्य में जन्म-जन्मान्तर के लिए पवित्र एवं दैवी राज्य-भाग्य के भागी बनोगे। हे वत्स, तब क्या तुम थोड़े समय के लिए महा विकार को

नहीं छोड़ सकते? क्या तुम मेरे लिए इतनी भी कुर्बानी नहीं कर सकते? क्या तुम्हारी इतनी भी प्रीति नहीं है कि थोड़े-से समय के लिए इस गन्दी आदत को छोड़ दो?

भगवान शिव कहते हैं – हे वत्स, जिस प्रकार आज आप गृहस्थ चला रहे हो, उसे गृहस्थ आश्रम नहीं कहा जा सकता क्योंकि आश्रम पवित्र स्थान को कहते हैं जबकि इस कलियुग में तो घर-घर में काम कटारी द्वारा हिंसा और भ्रष्टाचार हो रहा है। हे वत्स, सच्चे अर्थ में गृहस्थाश्रम तो श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण के गृहस्थ को कहा जा सकता है, जिसमें काम विकार का नाम-निशान भी न था बल्कि योगबल से सन्तति होती थी। अत: अपने उन पूर्वजों के समान तुम्हें भी पवित्र बनना चाहिए। भगवान की संतान होकर अब शैतान का काम नहीं करना चाहिए। अब तो काम रूपी विष का पीना और पिलाना बन्द करके ज्ञानामृत पीना चाहिए।

अन्न की सात्त्विकता और पवित्रता

अन्न का मनुष्य के मन पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। तमोगुणी भोजन खाने से मनुष्य शीघ्र ही उत्तेजित हो उठता है और उसकी वृत्ति अपवित्र ही बनी रहती है तथा उसमें आलस्य, निद्रा आदि प्रधान रहते हैं। इसी प्रकार रजोगुणी अन्न खाने से भी मनुष्य का मन बहुत चंचल रहता है और दृष्टि तथा वृत्ति अपवित्र बनी रहती है। मनुष्य थोड़ी-सी बात पर उत्तेजित और क्रोधान्वित हो जाता है और उसकी निर्णय-शक्ति उचित तथा अनुचित में अथवा धर्म तथा अधर्म में ठीक रीति से भेद नहीं कर पाती। जिस मनुष्य का आहार सतोगुणी न हो, वह न तो काम-क्रोधादि विकारों पर पूर्ण विजय पा सकता है और न ही योग में उच्च स्थिति प्राप्त

कर सकता है।

अत: यदि हमें ईश्वरीय स्मृति का आनन्द प्राप्त करने की इच्छा है, यदि हम भोगी से योगी बनना चाहते हैं और यदि कर्मेन्द्रियों तथा विकारों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें अपने आहार पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। हमारा आहार पवित्र धन द्वारा इकट्ठा किया गया होना चाहिए और उसमें वही पदार्थ होने चाहिएँ जोकि देवताओं के मन्दिर में देवताओं के भोग के लिए रखे जाते हैं। परन्तु इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि हमें किसी कामी व क्रोधी मनुष्य द्वारा पकाया गया भोजन सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे अन्न का प्रभाव मन पर पड़ता है, वैसे ही मन का प्रभाव भी अन्न पर पड़ता है। विकारी मनुष्य द्वारा बनाया हुआ भोजन भी दूषित हो जाता है और योगाभ्यासी मनुष्य के खाने योग्य नहीं रहता, क्योंकि वह मन पर बुरा प्रभाव डालता है। अत: हमें चाहिए कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करता है और परमपिता परमात्मा की स्मृति का अभ्यास करता है, उस ही के हाथों से बना हुआ भोजन हम लें, ताकि वह हमारे आध्यात्मिक पुरुषार्थ में सहायक हो। पुनश्च, भोजन करते समय हमें परमपिता परमात्मा की स्नेह-युक्त स्थिति में रहना चाहिए क्योंकि इससे हम भोजन में आसक्त नहीं होते और भोजन भी पवित्र हो जाता है।

ज्ञानवान और योगयुक्त लोगों का संग

संग और रंग मनुष्य पर शीघ्र ही धीरे-धीरे थोड़ा बहुत चढ़ता अवश्य है। अत: हमें विकारी मनुष्यों के संग में न रहकर ईश्वर प्रेमी, योगाभ्यासी तथा निश्चय बुद्धि लोगों ही का संग करना चाहिए ताकि हमारी भी लग्न दिनोंदिन बढ़े। यदि कार्य-व्यवहार के कारण हमें विकारी लोगों के निकट रहना पड़ता है तो हमें यह कोशिश करनी चाहिए कि हमारा मन सत्य-

स्वरूप परमपिता परमात्मा के संग अर्थात् स्मृति में रहे और हमें ज्ञान-योगादि की चर्चा करते रहना चाहिए ताकि वातावरण में आध्यात्मिक का प्रवाह रहे। हमें गंदी पुस्तकों का संग ही छोड़ देना चाहिए तथा सिनेमा या मन पर बुरा प्रभाव डालने वाली अन्य जो बुरी बातें हैं अथवा लोग हैं उनका भी संग नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे संग से मनुष्य बहुत-सी बातें सीख लेता है जिन्हें जीवन से निकालना बहुत कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त, जिन पुस्तकों में देवी-देवताओं की निन्दा की गई हो, उनके जीवन में भी विकारों के अस्तित्व का उल्लेख किया गया हो, उन्हें भी झूठी और गन्दी पुस्तकें मानकर उनसे दूर रहना चाहिए, चाहे वे किसी धर्मग्रंथ के रूप में ही क्यों न हों।

प्रतिदिन ज्ञान-स्नान

ऊपर बताए गये नियमों का पालन करने के अतिरिक्त हमें नित्य प्रति ज्ञान-स्नान अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि उसी से ही आत्मा का मैल धुलता है तथा दैवी गुण जीवन में आते हैं। बुराई के मार्ग पर न जाने की सावधानी भी मिलती है और पवित्र रहने तथा योगयुक्त होने की प्रेरणा भी मिलती है। यदि किसी अटल कारण से हम किसी दिन ज्ञान-कक्षा में नहीं भी जा सकते तो भी हमें परमपिता परमात्मा शिव द्वारा दिये गये ज्ञान पर आधारित कुछ लेखों, कुछ शिक्षाओं इत्यादि का अध्ययन और मनन-चिन्तन अवश्य ही करना चाहिए।

इस प्रकार यदि हम ऊपर बताये गये तथा अन्यान्य ईश्वरीय नियमों का पालन करेंगे तथा अन्य ईश्वरीय युक्तियों का पालन करेंगे तो हमारा जीवन हीरे-तुल्य अवश्य बनेगा।

❑

दैनिक चार्ट

पिछले पृष्ठों में जिन तीन ईश्वरीय युक्तियों का उल्लेख किया गया है, उन्हें आचरण में लाने के लिए हमें पूरा-पूरा पुरुषार्थ करना चाहिए। हमें प्रतिदिन इस बात की जाँच भी करनी चाहिए कि पुरुषार्थ में हमें कहाँ तक सफलता मिली है। नीचे हम कुछ प्रश्न लिख रहे हैं। उन्हें आप एक चार्ट का रूप दे सकते हैं। इस तरह का एक चार्ट रखना बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

1. **(क)** आप ईश्वरीय स्मृति में विशेष रूप से कितना समय बैठे?
   (ख) कार्य-व्यवहार आदि करते समय आप सारे दिन में कितना ईश्वरीय याद में रहे?
2. योग में आपकी स्थिति साधारण थी, अच्छी थी या बहुत ही अच्छी थी?
3. आपने आज ज्ञान का मनन-चिन्तन कितना समय किया?
4. **(क)** आज आपने विशेष तौर पर किस दिव्य गुण की धारणा के लिए पुरुषार्थ किया?
   (ख) क्या उसमें आपको सफलता मिली?
5. **(क)** क्या आपने पवित्रता, स्वच्छता, भोजन और निद्रा से पहले ईश्वरीय स्मृति में स्थिति आदि नियमों का संतोषजनक रीति से पालन किया?
   (ख) कौन-से नियम का आज आपने पालन नहीं किया?
6. **(क)** क्या आपने दूसरों की कोई ईश्वरीय सेवा की?
   (ख) क्या आपने आज ईश्वरीय ज्ञान ही सुनाया या ईश्वरीय सेवार्थ कुछ धन दान किया या योग द्वारा सेवा की?
7. **(क)** आपके मन में कोई विकार तो नहीं आया?
   (ख) यदि आया तो क्या वह मन तक ही रहा या वचन में या कर्म में आया?
   (ग) क्या आपने उस विकार से अच्छी तरह युद्ध किया? यदि हाँ, तो आपने अपने ही ज्ञान बल से अथवा योग बल से या किसी अन्य अच्छे पुरुषार्थी की सहायता के द्वारा उससे निवृत्ति प्राप्त की?
   (घ) यदि आपकी विकार से हार हुई तो किस कारण से?
8. क्या व्यर्थ संकल्पों या कार्यों में आज आपने कुछ समय व्यर्थ तो नहीं किया?